Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
January to March 2026, E-Journal, Vol. I, Issue LIII (53), ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना

डॉ. बालेश्वर प्रसाद*

*ऐसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी) अतर्रा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अतर्रा, बाँदा (उ.प्र.) भारत

शोध सारांश – केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना अत्यंत विकसित है। केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में साहित्यक और सांस्कृतिक चेतना का आधार लोकजीवन, प्रकृति प्रेम और प्रगतिशील मूल्य हैं। उनकी कविताओं में जनपदीय संस्कृति, श्रम की महत्ता और मानवीय संवेदनाओं के गहरे दर्शन होते हैं।साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना की प्रमुख विशेषताएं लोकधर्मिता और जनजीवन उनकी रचनाओं में बुंदेलखंड और ग्रामीण भारत की संस्कृति, मेले, त्यौरियां, और जनसामान्य के जीवन की सहजता साफ झलकती है।प्रकृति और मनुष्य का साहचर्य प्रकृति उनके लिए सिर्फ सौंदर्य का साधन नहीं, बल्कि जीवन की प्रेरणा और माँ जैसी पूज्य है। वे खेत–खलिहान और मेहनत करने वाले आम आदमी के कवि हैं। उनकी कविताओं में साम्यवादी और मानवतावादी विचारधारा प्रमुखता से उभरती है।दांपत्य और पारिवारिक प्रेम उन्होंने भारतीय समाज की सांस्कृतिक परंपरा के भीतर स्त्री–पुरुष के समान अधिकार और पवित्र दांपत्य प्रेम के सुंदर चित्र उकेरे हैं।यदि आप चाहें तो मैं केदारनाथ अग्रवाल की किसी विशेष रचना जैसे 'युग की गंगा' या 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' के आधार पर उनकी चेतना का और अधिक विस्तार कर सकता हूँ। इस प्रकार उक्त शोधपत्र की शोधात्मक विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना की चेतनाएँ विद्यमान हैं।

प्रस्तावना – केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सांस्कृतिक एवं साहित्यिक बोध इस शोध पत्र का वर्ण्य विषय है। इसकी शोध परक विवेचना करने के पूर्व इसके सार रूप पर संक्षिप्त प्रकाश डालना उचित प्रतीत होता है। केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सांस्कृतिक एवं साहित्यिक बोध की यथार्थ परक झांकी देखी जा सकती है। इस शोधा लेख में केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सांस्कृतिक एवं साहित्यिक बोध की शोधात्मक विवेचना की गई है। आधुनिक साहित्य के प्रणेताओं ने दो प्रकार के आन्दोलन प्रारम्भ किये। एक तो प्राचीन सामन्ती मर्यादाओं के विरूद्ध। यद्यपि ब्रिटिश शासन ने भारतीय संस्कृति का सर्वथा नाश करने का प्रयत्न किया परन्तु एक तथ्य यह भी है कि सांस्कृतिक अवस्था की दुर्दशा के बिगडे हुये रूप के लिये सिर्फ वे ही जिम्मेदार नहीं, वरन उसके लिये अकर्मण्य भारतीय–जन भी जिम्मेदार है। अत: जरूरी यह है कि औद्योगिकीकरण के क्रम में धर्म और संस्कृतिक की बाधायें जहाँ हो, वहाँ धर्म और संस्कृति को नया रूप लेना होगा। केदार जी ने अपने काव्य में इन दोनों ही पहलुओं को प्रतिबिम्बत किया है। समाजशास्त्रीय आधार पर संस्कृति के दो भेद किये जा सकते हैं– 1. भौतिक संस्कृति, 2. अभौतिक संस्कृति। प्रगतिवादी कवियों का धर्म, ईश्वर व अध्यात्म पर कम ही विश्वास रहा है इसलिये उनके काव्य या साहित्य में अधिकांशत: भौतिक संस्कृति के दर्शन होते हैं परन्तु अभौतिक संस्कृति का पूर्ण रूप से अभाव भी नहीं है।

धर्म, दर्शन व मानवीय सिद्धान्तों के कारण भरतीय संस्कति ने विश्व में अपना परम फहराया है। अपनी संस्कृतिक परम्पराओं के बल पर ही विश्व गुरू बने भारत के साहित्य में भी उन साहित्यिक परम्पराओं का निर्वाह भली–भाँति हुआ है। जो सत्य युगानुरूप काव्य में व्यक्त होता है, वही युग–सत्य है और जो युग–सत्य है, वही शाश्वत भी है क्योंकि सत्य स्वयं शाश्वत है, वह मरता नहीं। काव्य में जिन सत्यों की अभिव्यक्ति होती है, वे सभी के सभी निरंतर तथा शाश्वत नहीं होते। जो सत्य हर युग के लिये मान्य है, उन्हें ही हम शाश्वत मूल्यों की कोटि में रख सकते हैं। कवि केदार ऐसे मूल्यों से परिचित हैं तथ उन्हें अपने काव्य में स्थान देते हैं।

भारतीय संस्कृति में मानव जीवन को सर्वोपरि माना गया है। भयावह से भयावह परिस्थितियों में जब जीवन में निराशा के क्षण आये, मृत्यु जब जीवन से सुखद और आसान लगने लगी तब हमारी सांस्कृतिक मान्यताओं ने ही विश्व को निराशा के अंधकार में आशा का दीप दिखया तथा जीवन की मृत्यु पर विजय प्रदर्शित की। कितने ही कठिन संघर्ष के दिन मनुष्य को जीवन का सम्मान करना चाहिये। केदार की युगीन परिस्थितियाँ भी कुछ ऐसी ही थीं और उन्होने अपने कवि कर्म का निर्वाह करते हुये जीवन की जय स्थापित की–

'चलो
बैठें
धूप खायें,
भूख वैभव की मिटायें
पियें पानी,
जियें
गुन से गुनगुनायें
रोशनी का प्यार पायें
जिन्दगी की
जय मनायें।।'[1]

इसी प्रकार केदार जी की कई कवितायें जीवन का गान गाती हुई प्रतीत होती है। लेकिन जीवन को वे पूर्ण उत्साह के साथ जीने पर यकीन करते हैं वे ऐसे जीवन को जीना मानतें है जो दूसरों के काम आयें। वे कहते हैं–

'जब तक जीना
इंसानों के हित में जीना,
आँधी पीकर आँधी बनना,
सच है जीना
प्रिय है जीना
लेकिन जीना
जब तक जीना–
सौ घोड़ों के बल से जीना।'[2]

वे सदैव आदमी की सुख शान्ति के लिये प्रयासरत रहे। कवि चाहता है कि मानव खुशी के गीत गाता हुआ जिन्दगी बिताये उसका कहना है–

'गीत गाता रहे गुगुनाता रहे,
गीत से जिन्दगी झनझनाता रहे,
झूम जाता रहे नाच जाता रहे,
आदमी मोद से मुस्कराता रहे।'[3]

हमारी संस्कृति में एक ओर जहाँ जीवन को श्रेष्ठ स्थापित किया गया है वहीं जिन्दगी को सुचारू व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये विविध रीति–रिवाजों परम्पराओं की रचना की गयी है। विभिन्न त्योहार तथा विधि–विधान से उनका मनाया जाना हमारी संस्कृति को और पुष्ट करता है। दीपावली हिन्दुओं का ही नहीं सम्पूर्ण भारत का पावन दीप पर्व है इसमें अन्धकार का नाश करने के लिये तथा संसार को प्रकाशित करने के लिये दीपों को जलाया जाता है इसके साथ ही लक्ष्मी का आह्वान किया जाता है जिससे जीवन सुखी व सम्पन्न हो सके। इन परम्पराओं का सुन्दर वर्णन देखिये–

'जलते
टिमकते हैं
अंधेरे की आधी रात में
अन्य माटी के दिये
आग के असुए उगाये
साल भर बाद
लौट आई लछमिनिया के
स्वागत में
'शुभ' से 'अशुभ' को
परास्त करते हैं
भड़भड़िया पटाखे,
छूटते–फूटते
जन देते
'लाभ' के लिये लालायित।'[4]

केदार जी जहाँ एक ओर किसानों, मजदूरों के अधिकारों के लिये सदैव सजग हैं वहीं वे उनकी शक्ति को पहचानना जानते हैं तथ वे मानते हैं कि यह शक्ति तभी काम आयेगी जब सक्रिय रहेगी। बिना सक्रियता के इस शक्ति का कोई उपयोग नहीं। कवि आह्वान करता है कि कर्म के बल से हम बंजर पर भी फूल खिला सकते हैं तथा नया प्रभात ला सकते हैं–

'हमारे हाथ में हल है
हमारे हाथ में बल है
कि हम बंजर को तोड़ेंगे
बिना तोडे न छोडेंगे।।'[5]

सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, करूणा आदि भाव मानवता को पुष्ट करते है। कवि इन भावों का पोषक है। वह जब संसार में चारों तरफ हिंसा, कटुता, क्रोध, मक्कारी का ताण्डव नृत्य देखता है जो रोके नहीं रूक रहा है वह अहिसा के परम अवतारी महापुरूष बुद्ध को पुकारता है कि क्योंकि वह जानता है कि अब वही आ कर संसार को मार्ग दिखा सकते हैं–

'जीवन की तकरार–दाह रोको निर्वाणी।
सत्य, अहिंसा, करूणा वरसो हे विज्ञानी।
पर्णकुटी का शुभागमन यह याद रहेगा।
जब तक गंगा–जमुना में बहता है पानी।'[6]

आज चारों तरफ झूठ, स्वार्थ और अन्याय का राज्य है इसीलिये मानवता क्रन्दन कर रही है। सत्य असत्य के सामने कमजोर पड़ता जा रहा है किन्तु कवि आशा नहीं छोडता है तथा वह स्वयं भी सत्य के आचरण के लिये प्रतिबद्ध है। आज मानव जीवन के सामने सबसे बड़ी समस्या यही है कि उसकी करनी तथा कथनी में अन्तर होता जा रहा है, जबकि हमारे महापुरूषों ने अपने वचन के लिये अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की कवि उसी परम्परा का निर्वाह करता है–

'जितना सत् है ग्रहण करूंगा
तन, मन, वाणी और कर्म में
उसी सत्य को वहन करूंगा
भीतर बाहर का कटु संकट
निर्भय होकर चूर्ण करूंगा।।'[7]

सम्पूर्ण विश्व की शरणस्थली यह धरती अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं के बल पर सम्माननीय रही है। आज की व्यवस्था को देखकर कवि अपने गौरवमयी इतिहास की ओर सहसा मुड जाता है। केदार जी ने ऐसे अनेकों ऐतिहासिक व पौराणिक सन्दर्भों का प्रयोग किया है। प्यार की महत्ता को प्रतिपादित करते हुये वे कहते हैं–

'आ जाते हैं याद मुझे भी आज सुदामा,
जिनके घर भूखी बैठी थी दीना भामा
फिर भी चावल चार प्यार के ले वह धाये,
मिले कृष्ण से अपनी आँखे शीश झुकाये।।'[8]

हमारी संस्कृति परम्पराओं में भौतिक जगत की अपेक्षा आध्यात्मिक जीवन को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है किन्तु प्रगतिवादी परम्परा में इन भवनाओं का हास हुआ। यद्यपि केदार जी इस संसार तथा उसके जीवन को महत्वपूर्ण मानते हैं परन्तु आध्यात्मिकता से भी पूरी तरह बच नहीं पाये हैं। 'जो शिलायें तोडते हैं' कविता संग्रह उनकी आध्यात्मिक बोध की कविताओं से भरपूर है किन्तु इन कविताओं में भी जीवन उपेक्षित नही है। वे ईश्वर को सच्चा हितैषी मानते हुये कहते हैं–

'किन्तु जहां पर स्वार्थ ठहरने देता है दिन चार नहीं
उन कर्मों को खोजो मत जिनमें दुःखमय संसार करो।
अपने स्वामी सा होगा चिरसंगी कौन विश्व भर में।
क्यों न उन्हें ही इष्ट मान निशि दिन पूजा सत्कार करो।।'[9]

भारतीय संस्कृति में प्रकृति का विशेष महत्व है। प्रकृति विविध रूपों में सदा जीवन से जुडी री है। नदी, पेड़, पौधे, पर्वत, पहाड़, सूर्य, पवन आदि प्रकृति के प्रमुख अवयव हैं जिनका जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध तो है ही साथ ही हमारी सांस्कृतिक विरासत की प्रमुख निधियां है। वे कहते हैं–

'पेड़ नहीं
पृथ्वी के वंशज हैं

फूल लिये
फल लिये
मनव के अग्रज हैं।'[10]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि केदार की कवितायें सांस्कतिक बोध से ओत-प्रोत हैं। केदार के सम्पूर्ण काव्य साहित्य का अध्ययन, मनन करने के बाद यह बात सहजता से स्वीकार की जाती है कि केदार की कविताओं में किसी न किसी रूप में संस्कृति के प्रत्येक पहलू को देखा जा सकता है। कभी वे पंचशीलता पर विचार करते नजर आते हैं तो कभी विश्व शान्ति का गीत गाते हुये सत्य, अहिंसा पर जोर देते हैं। कभी मानव को प्रेम का पाठ पढ़ाते हैं तो कभी प्रकृति का नमन करते हैं। कभी अतीत की गौरवपूर्ण परछाइयां सामने उपस्थित होती हैं तो कभी वर्तमान की विभीषिका को शान्त करने के उपाय हमारी संस्कृति से ही खेजते नजर आते हैं। कभी कर्म को सर्वश्रेष्ठ रूप में प्रतिष्ठित करतें हैं तो कभी ईश्वर को सृष्टि का कर्ता-धर्ता स्वीकार करते हैं। इस प्रकार केदार जी की कवितायें अपने युगीन संस्कृति की प्रमुख रूप से संवाहक हैं जिनमें आज के सांस्कृतिक-बोध स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं।

साहित्य प्रत्येक स्तर पर मनुष्य की जिन्दगी से जुड़ा है जिसमें उसके रहन-सहन, आचार-विचार, उनकी नैतिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों का समिश्रण होता है। अत: जब साहित्यकार साहित्य में युग की सारी विशेताओं का अंकन होता है। अत: जब साहित्यकार साहित्य का सृजन करता है तब उसका युगीन परिस्थितियों के बारे में जाग्रत रहना नितान्त आवश्यक है। जब लेखक उसे सृजनात्मक दृष्टिकोण में रखकर अपनी अनुभूतियों के सहारे किसी रचना में प्रस्तुत करता है तब वह साहित्य माना जाता है, तब युग चेतना का सम्बन्ध उससे स्थापित किया जा सकता है। केदार जी के काव्य में भी इस प्रकार के साहित्यिक बोध को देखा जा सकता है। केदार जी अपने कवि कर्म के प्रति सदैव सचेत नजर आते हैं।

'हर प्रबुद्ध सर्जक अपने युग का प्रबुद्ध चेता होता है, उसकी संवेदना अपने में नवीन तत्वों कोा समेटती चलती है। अत: जब वह सर्जन करता है तब उसके व्यक्तित्व में आत्मसात परम्परागत और नवीन चेतनायें अपने आप व्यक्त होती है रहती हैं। साथ-साथ वह अपने सर्जक के समय जागरूक भी रहता है।'[11] केदार जी ने भी अपनी कविताओं में वही लिखा जो उन्होने जिया है और दूसरों के साथ जिया है-

'कविताओं में जो मैंन लिखा
उसे मैंने अपने में आप
और दूसरों के साथ जिया
फिर उस जिये को
जीवन शब्दों से सम्प्रेषित किया।'[12]

केदार जी का मानना है कि कवि को अपने कर्तव्य का सदैव स्मरण रखना चाहिये क्योंकि कवि ही युग को स्वर प्रदान करता है और जब कवि अपनी कविताओं से युगबोध पस्तुत करता है तभी वह सफल माना जाता है-

'कवि का स्वर ही
युग का स्वर है
और इसी से
स्वर जनगर है
और सबल है
और इसी से
स्वर से शाशित
देश अमर
कर्म सफल है।'[13]

कवियों की एक लम्बी परम्परा रही है। केदार जी उस कवि परम्परा की एक कड़ी है। इसमें कबीर, सूर, तुलसी, हरिश्चन्द्र आदि भाग्यशाली व्यक्तित्व शामिल रहे हैं। ये कवि सदैव सांस्कृतिक परम्परा के पोषक और मानवता के गायक रहे हैं। कवि कहता है-

'हम लेखक हैं
कलाकार हैं
हम जीवन के भाष्यकार हैं
हम कवि जनवादी
चंद सूर
तुलसी कबीर के
संतों के हरिश्चन्द्र वीर
हम वंसज बड़भागी।
प्रिय भारत की
परम्परा के,
जीवन की संस्कृति-सत्ता के
हम कर्मठ युगवादी।'[14]

प्रत्येक कवि व साहित्यकार का प्रथम कर्तव्य अपने समाज के प्रति होता है। केदार जी की कलम भी युग सत्य लिखने को तैयार है। उन्हें धर्म, कर्म, पैसा, वैभव किसी का सहारा नहीं है उनकी कवितायें इस नश्वर में अमर रहने वाली हैं। उनकी वे कवितायें उनकी ही नहीं सभी जनों की आवाज तथा सहारा हैं वे लिखते हैं-

'नहीं सहारा रहा
धरम का और करम का
एक सहारा है
बस मुझको नेक कलम का
जरा मरण से हार न सकते
मेरे अक्षर
मेरी कवितायें गायेंगीं
जनता सस्वरा।'[15]

निष्कर्ष - इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सांस्कृतिक एवं साहित्यिक बोध अत्यंत विकसित है।संक्षेप में कहा जा सकता है कि साहित्य की विषय-वस्तु जीवन है और साहित्य का प्रयोजन भी जीवन से संबन्धित है। इस प्रकार कोई भी साहित्यिक कृति जो जीवन से युक्त नही है सफल नही मानी जा सकती। वास्तव में साहित्यकार अपनी रचना के विधायक तत्वों का आकलन जीवन से करता है। इसलिए साहित्य में सचेत जीवन की प्राय: सभी विशेषताएँ पायी जाती है। केदार जी भी समाज के नए संदर्भों और प्रश्नों को समझ सकें, नये भाव-भाव के नये आयामों का नया परिवेश समझ सकें, नयें मूल्यों को नये परिवेश में प्रस्तुत कर पायें इसीलिए वे युगबोध से सम्बन्धित साहित्य का सृजन कर सके हैं। इस प्रकार उक्त शोधपत्र की शोधात्मक विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में सांस्कृतिक एवं साहित्यिक बोध की चेतनाएँ विद्यमान हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. बोलें बोल अबोल- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-29, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1985
2. बसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-56, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1996
3. बसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-81, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1996
4. बोलें बोल अबोल- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-92, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1985
5. कहें केदार खरी-खरी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-66, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1983
6. बसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी - केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-130, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1996
7. बसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी - केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-135, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1996
8. बसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी - केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-136, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1996
9. जो शिलायें तोडते हैं- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-22, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1986
10. फूल नही रंग बोलते है - केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-36, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1965
11. बोलें बोल अबोल- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-141, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1985
12. बसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-126, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1996
13. गुलमेंहदी- केदार नाथ अग्रवाल, प्र0सं0-118, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1978
14. बोलें बोल अबोल- केदार नाथ अग्रवाल, पृ0सं0-92, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, सन्-1985

****